गांधी-मार्ग

सितंबर-अक्तूबर 2025

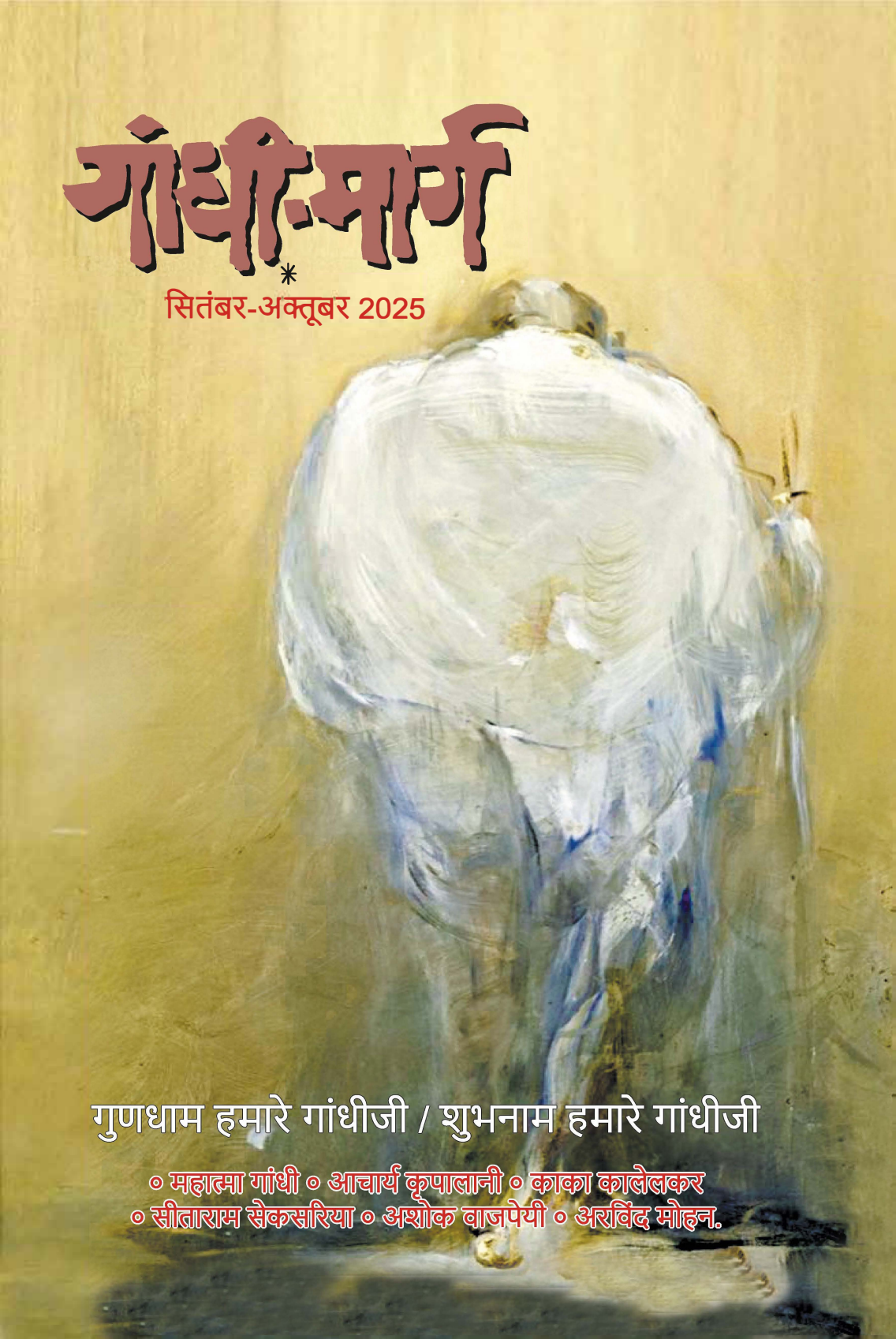

गुणधाम हमारे गांधीजी / शुभनाम हमारे गांधीजी

० महात्मा गांधी ० आचार्य कृपालानी ० काका कालेलकर
० सीताराम सेकसरिया ० अशोक वाजपेयी ० अरविंद मोहन.

गांधी इतिहास नहीं
वर्तमान और भविष्य भी हैं...

वर्तमान को समझिए... भविष्य को बनाइए!

*

गांधी शांति प्रतिष्ठान से जुड़िए.

हमारे केंद्र :

०भागलपुर ०जोधपुर ०पटना ०भुवनेश्वर ०जमशेदपुर ०जम्मू
०मुजफ्फरपुर ०इंदौर ०कौसानी ०कानपुर ०भद्रक ०राउरकेला
०बैंगलूरू ०धारवाड़ ०कोचिन ०कालिकट ०त्रिवेंद्रम ०त्रिशूर
०अहमदाबाद.

गांधी-मार्ग

अहिंसा-संस्कृति का द्वैमासिक
वर्ष 67, अंक 5, सितंबर-अक्तूबर 2025

गांधी शांति प्रतिष्ठान

1. शुरू में...		3
2. सुनो-सुनो : 15 अगस्त!	त्रिभुवन	**7**
3. 2 अक्तूबर : जन्मदिन		10
4. समस्या : गंदे मन का साफ देश	नूर महविश	35
5. हिमालय : अपनी नदियों को ...	सुधीर विद्यार्थी	39
6. बैंकिंग : लुटेरे बैंक	थॉमस फ्रैंको	42
7. आईना : हिंदी समाज...क्यों हो रहा है?	अशोक वाजपेयी	46
8. अंतरमन : कामना का त्याग	आचार्य महाश्रमण	56
9. टिप्पणियां :		59
10. पत्र		63

आवरण : प्रकाशपुंज की तरह प्रकाश की ओर जाते गांधी की यह छवि उकेरी है बांग्लादेश के कलाकार शहाबुद्दीन अहमद ने, जो हमें हमारे आत्मीय ओम थानवी के सौजन्य से प्राप्त हुई है. शीर्षक की पंक्तियां भारतीय फिल्मों के यशस्वी संगीतकार सचिनदेव बर्मन (1906-1975) ने 1960 में लिखीं, धुन बनाकर गाई. उनका यह गीत आप अंक में भीतर पढ़ सकेंगे तथा यूट्यूब पर खोज कर सुन भी सकेंगे. आवरण सज्जा की है **मुकेश गेरा** ने.

वार्षिक शुल्क : भारत में 200 रुपये, दो वर्ष के 350 रुपये, आजीवन-1000 रुपये (व्यक्तिगत), 2000 रुपये (संस्थागत), एक प्रति का मूल्य 20 रुपये, डाक खर्च निःशुल्क. दो माह तक न मिलने पर शिकायत लिखें. अपना शुल्क चेक, बैंक ड्राफ्ट, मनीऑर्डर द्वारा 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' के नाम भेजें. ऑनलाइन भुगतान के लिए केनरा बैंक खाता नं. 0158101030392 IFSC CODE : CNRB 0000158.

संपादन : कुमार प्रशांत **प्रबंध :** मनोज कुमार झा **प्रसार :** भगवान सिंह

गांधी शांति प्रतिष्ठान, 223 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002 के लिए अशोक कुमार द्वारा प्रकाशित
फोन : 011-2323 7491, 2323 7493, **Email:** gmhindi@gmail.com

मुद्रक : नीता प्रेस, 3574- गली जटवारा, नियर सबलोक क्लीनिक, दरियागंज, दिल्ली-110002, फोन नं. 8800646548

शुरू में...

कलम में जितनी संभव है, शर्म की उतनी स्याही भर कर; अपने देश के नाम जितने संभव हैं उतने खून के आंसू पी कर; और भारतीय न्यायपालिका की तरफ पछतावे से भरी आंखों से जितना देखना संभव है, उतना देखते हुए मैं यह लिख रहा हूं. रात के 3 बज रहे हैं लेकिन मैं चाह कर भी आंखें बंद नहीं कर पा रहा हूं, क्योंकि आज का यह सारा माहौल खुली आंखों से जितना सर्द व घुटता हुआ लगता है, बंद आंखों में वह उससे भी भयावह व दमघोंटू बन जाता है. आपने कभी महसूस किया है कि जब अंधकार सामने आकर आपको घूरने लगता है तब वह कितना अंधेरा होता है! वह अंधकार से भी अंधेरा हो जाता है, क्योंकि तब वह बोलने भी लगता है.

आज ही दिल्ली हाइकोर्ट ने अपने देश के उन 10 नागरिकों को जमानत देने से मना कर दिया जो पिछले 5 सालों से जेलों में बंद हैं. न्यायमूर्ति नवीन चावला व शालिंदर कौर की बेंच ने जमानत रद्द करते हुए जो कहा उससे मुझे ख्याल आया कि सच, मूर्तियां भी कहीं न्याय करती हैं क्या! कर सकती हैं क्या? करें तो वे मूर्तियां न रहें! कौन हैं ये 10 लोग? नाम ही काफी है : सरजिल इमाम, उमर ख़ालिद, गुफिशा फातिमा, अख़्तर खान, अब्दुल खालिद सैफी, मुहम्मद सलीम खान, शिफा-उर रहमान, मीरान हैदर और शादाब अहमद. 10वें अपराधी तसलीम अहमद की जमानत रद्द करने का श्रेय न्यायमूर्ति सुब्रमनियम प्रसाद तथा हरीश वैद्यनाथन शंकर की बेंच को जाता है. इन दसों का अपराध एक ही है कि इन सबने "सोच-समझ कर, बखूबी बनाई योजना के तहत 2020 में राजधानी दिल्ली में दंगों को अंजाम दिया!"

क्या मैं इन दसों को याकि इनमें से किसी एक को भी जानता हूं? नहीं, हरगिज नहीं! लेकिन मैं इनमें से एक-एक को जानता हूं, क्योंकि जीवन के जो 75 से अधिक वसंत मैंने अभी तक बिताए हैं, उनमें ये ही लोग मेरे अगल-बगल रहे, बोले, चले, खेले हैं. मैं अगर इन 10 लोगों के नाम आपको फिर से बताऊं तो मेरी बात समझना शायद ज्यादा आसान हो जाए आपके लिए - शिवशंकर प्रसाद, राज कुमार जैन, शरद यादव, मीरा कुमारी, सुब्रमण्यम स्वामी, सदानंद सिंह, कार्तिक उरांव, बिशन सिंह बेदी, कुंती मुर्मू और प्रकाश झा. ये वे 10 लोग हैं जिन्होंने 75 से ज्यादा सालों से बड़े हो चुके हमारे गणतंत्र की जड़ें खोदने की योजनाबद्ध साजिश की. सरकार, नौकरशाही, पुलिस सब कह रहे हैं कि ये 10 यदि सप्रमाण पकड़े न गए होते तो हमारे सामने हमारा गणतंत्र नहीं, उसका मलबा पड़ा होता आज!

इस सूची को देखते ही मेरी तरह आपके मन में भी तत्क्षण यह सवाल पैदा होगा कि क्या कभी ऐसा संभव है कि कोई 10 लोग मिल कर, करोड़ों की आबादी वाले इस महान देश की जड़ें खोद दें? अगर ऐसा कभी हुआ तो मैं कहूंगा कि इसकी जड़ें थीं ही नहीं! फिर मेरी तरह आपके जहन में भी ख्याल आएगा कि यदि इतना बड़ा षड्यंत्र रचा गया तो इस बहुधर्मी देश में यह कैसे संभव हुआ कि सिर्फ हिंदू ही इसमें लिप्त थे? यह बात तो अब तक बड़ी मजबूत लगती आ रही थी, बड़े-बुजुर्गों द्वारा हमें समझाई जा रही थी कि अपराध व अपराधी की जाति-धर्म का ठिकाना नहीं होता है. तो फिर यह कैसे हुआ कि इस मामले में यह ठिकाना पक्का व पुख्ता हो गया कि सिर्फ हिंदू ही षड्यंत्र में शामिल थे? लगता है न कि कहीं कुछ गड़बड़ है! कोई उन्मत्त होकर कहेगा कि (एक भद्दी-सी गाली देते हुए जैसी 'गोली मारो...' का नारा खुलेआम लगाते हुए हमारे एक-दो-तीन-चार ...सत्ताधारी कुंवरों व बादशाह ने दी थी, देते ही रहते हैं!) कि सबको फांसी चढ़ा दो! मैं कहूंगा : क्या बात कही है, एकदम मेरे मन की बात है! लेकिन आप कहेंगे कि नहीं, नहीं, जरा जांच-परख लो! फांसी का क्या है, वह तो अपने कानून के हाथ में आज भी है, कल भी रहेगी! लेकिन संविधान है न हमारा, और उसकी बनाई न्यायपालिका है न, तो उसे अपना काम करने दो; इन सारे अपराधियों पर आज-के-आज मुकदमा चले, इनका अपराध प्रमाण सहित देश जान ले और फिर इनको फांसी दे दी जाए! मैं कहता हूं कि भाई, क्या बात कही है आपने! एक सभ्य समाज में, जिसमें इंसान बसते हैं, वहां ऐसा ही होना चाहिए!

आप ऐसा कहेंगे तो इन 10 में से कोई एक (याकि सभी-के-सभी!) कह उठेंगे : "हम तो पिछले 5 सालों से जेलों में बंद हैं. न कभी मुकदमा चला है इन सालों में, न हमारी पेशी हुई है, न उधर से कभी वकील खड़ा हुआ है, न इधर से! हम पर जो भी आरोप हैं, जो पुलिस के कागजात हैं, वे सब हमें दिए जाएं ताकि हम भी और हमारे वकील भी उसे देखकर यह तो समझ सकें कि आरोप क्या हैं, और हमारा जवाब क्या है? मुकदमा चले और माननीय न्यायमूर्ति उसे सुनें, देश भी जाने, संविधान भी उसे परखे और फिर साबित हो कि फांसी पड़नी चाहिए, तो पड़े!! हम जो मांग रहे हैं वह रिहाई नहीं है, जमानत है. आपने ही हमें बताया-सिखाया है कि हमारे लोकतंत्र में जमानत नागरिक का स्वाभाविक अधिकार है, जेल अंतिम अपवाद है! तो हमारे मामले में यह क्यों नहीं हो रहा है? संविधान कहता है कि बिना मुकदमा चलाए किसी को जेल में बंद रखना उसके लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन है. इस हनन को रोकने के लिए ही तो हमने न्यायपालिका नाम का इतना बड़ा सफेद हाथी पाल रखा है. यह खाता बहुत है, करता क्या है, यह समझना अब भारी हुआ जाता है."

आपको भी लग रहा है न कि इस दूसरी सूची के अपराधियों का यह कहना

एकदम खरा है! आज ही मुकदमा चलाओ और कल फांसी दे दो, कोई एतराज नहीं करेगा! लेकिन जरा ठहरिए, जब हम यही बात दूसरी नहीं, इस आलेख की पहली सूची के लिए कहते हैं, तो सब पलट जाते हैं. तो बात ऐसी बनती है कि अपराध व अपराधी का फैसला हम नाम देखकर करते हैं. यह शर्मनाक है, यह अंधेरा है, यह दमघोंटू है. यह लोकतंत्र की हत्या है. पहली सूची सच्ची है, दूसरी मनगढ़ंत है.

क्या हमारे न्यायमूर्तियों को कभी इसका अहसास होता है कि जितनी बार वे पहली सूची के लोगों की जमानत रद्द करते हैं, उतनी-उतनी बार न्यायपालक की उनकी छवि धूमिल होती जाती है? क्या हमारी न्यायपालिका को इसका अहसास है कि भारतीय नागरिक के मन में आज अपने चुनाव आयोग की विश्वसनीयता जिस गतालखाने में चली गई है, न्यायपालिका की विश्वसनीयता उसके आसपास ही है?

बहुमत के नशे में चूर कोई सरकार ऐसा कानून बना देती है जिसमें व्यवस्था यह बनाई गई है कि यूएपीए के मामले में की गई गिरफ्तारी न्यायपालिका की समीक्षा के भीतर नहीं आएगी; ऐसा चुनाव आयोग बनाया जाता है कि जो हमेशा सरकार की तरफ ही झुका रहेगा; ऐसा कानून बनाया जाता है कि चुनाव आयुक्तों पर कभी, किसी अदालत में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है आदि, और हमारी न्यायपालिका देखती रह जाती है, तो वह अपने अस्तित्व का मतलब ही खो देती है.

हम भारत के नागरिकों ने अपने संविधान की संरचना ऐसी बनाई जिसमें हमने अपनी न्यायपालिका को यह आदेश दिया है कि आपको निरंतर चौकन्ना रह कर देखना है कि कोई विधायिका या कोई कार्यपालिका या न्यायतंत्र का कोई भी पुर्जा कहीं से, कभी संविधान पर हाथ न डाल सके! ऐसा होने से पहले, ऐसा होने के बाद या ऐसी संभावना भांप कर न्यायपालिका को संविधान की तलवार लेकर खड़ा हो जाना है. इसलिए संविधान में हमने एक ही ऐसी संरचना बनाई है, न्यायपालिका, जिसे सतत विपक्ष में रहना है यानीकि संविधान के पक्ष में रहना है. हमारा संविधान अलिखित नहीं, लिखित है, और उसे सिर्फ वकील साहबान नहीं, हम भी पढ़ पाते हैं. हम भी संविधान पढ़ते हैं, इसलिए जब आपकी व्याख्याएं बहुत जटिल होती हैं, तब हम आसानी से समझ जाते हैं कि आप संविधान के शब्दों के पीछे छिपी भावना को समझने में चूक रहे हैं या फिर संविधान की अपनी लक्ष्मण-रेखा पर पांव धर रहे हैं. यह वह लोकतांत्रिक अपराध है जिसकी सजा आपकी नहीं, हमारी अदालत में दी जाती है. न्यायमूर्तियों, सरकारों को भले पांच साल में एक बार (या जब भी चुनाव हो!) हमारी अदालत में आना पड़ता है, आप तो हर रोज हमारी अदालत में होते हैं, यह न हम भूलें, न आप!

2020 का दिल्ली दंगा पूर्वनियोजित था. भारतीय नागरिकों ने उस दौर में अपूर्व एकता व साहस के साथ दिल्ली में ही नहीं, देश भर में अपने संविधान के

आईने में अपनी छवि खोजी थी. तब की सरकार को वह बहुत बड़ी व गहरी चुनौती थी कि "किधर से बर्क चमकती है देखें ऐ वाइज / मैं अपना जाम उठाता हूं, तू किताब उठा!" इसलिए सरकार ने दंगे भड़का कर, इस चुनौती को तोड़ा.30 जनवरी 1948 नहीं आई होती और महात्मा गांधी जीवित होते तो वे भी 2020 में अपने युवकों के साथ उसी तरह खड़े होते जिस तरह सन् 42 में हुए थे. लेकिन इतिहास बताता है कि उस दौर में भी लोग भटके थे, गलत रास्तों की ओर गए थे, और तब गांधी ने ही अपनी अदालत में उनकी पेशी ली थी. वैसी ही सावधानी आज भी करनी है. इसलिए बगैर पल गंवाए इस लेख की पहली सूची के लोगों पर मुकदमा चलाया जाए व रोज-रोज की सुनवाई के साथ अदालत अपना फैसला सुनाए. फिर संविधान के जाल में फंसता कौन है, किसे फांसी होती है, यह तमाशा हम सब देखेंगे. इसलिए हमारे लोकतंत्र को आज व अभी जमानत चाहिए.

■

जमानत की बात कर रहा हूं तो नेपाल की बात कैसे न करूं! उसे भी जमानत चाहिए; और आप जमानत नहीं देंगे, तो लोग सड़कों पर उतर कर उसे छीन लेंगे. किसी को, किसी से छीनना न पड़े, इसलिए तो हमने एक संविधान बनाकर आपको दिया है कि इसे पढ़ो, समझो और इसका कहा ही करो! हम वैसा न करें तो हमें भी इसी संविधान की सजा दो, हम सिर झुका कर उसे कबूल करेंगे; करते ही तो आए हैं न! लेकिन जब तुम संविधान को किसी फालतू, गंदे कागज की तरह इस्तेमाल करने लगते हो, तब हम क्या करें, कैसे तुम्हें सजा दें? तुम्हें अराजकता व आग व हिंसा व बर्बादी दिखाई देती है; हमें सारे राष्ट्र की, सारे नेपाल की, सारे सरगमाथा की लाचारी व अपमान दिखाई देती है. हम नहीं चाहते हैं कि वह सब हो जो नेपाल में हुआ; लेकिन हम यह भी नहीं चाहते हैं कि नेपाल में जो चल रहा था, वह चलता रहे. फिर क्या हो? हमें याद रखना चाहिए कि 1942 में, अंग्रेजों को भारत छोड़ने का आदेश देने तथा जनता को 'करो या मरो' का निर्देश देते हुए गांधी ने भी बताया था कि मुझे लोग चेतावनी दे रहे हैं कि इस आह्वान से देश में आग लग जाएगी. लेकिन मैं क्या करूं! यदि मुझे इस आग में उतरकर ही अपनी आजादी खोजनी पड़े तो वही सही! हम नेपाल की परिवर्तनकारी जनता का साधुवाद करते हैं और नेपाल को अपनी प्रार्थना में रखते हैं.

० कु.प्र.

*